मार्च १९९७ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

आत्म कथनः शिविर संस्मरण

अच्छा ही हुआ

नेपाल के श्री यदुकुमार सिद्धि बोधगया में लगे प्रारंभिक शिविरों में भाग लेकर बहुत लाभान्वित अतः प्रभावित हुए। इनके कारण इनके अनेक संगी-साथी तथा स्वजन-परिजन भी शिविरों से लाभान्वित होते रहे। तब उनकी ओर से यह दबाव बढ़ने लगा कि मैं एक शिविर बीरगंज या काठमांडू में अवश्य लगाऊं। मैं भी चाहता था कि इस बहाने नेपाल की धर्मयात्रा भी कर लूं। उस पावन प्रदेश में हिमालय की ध्यान-संवर्धनी तरंगों के आकर्षण के साथ-साथ एक और बड़ा आकर्षण यह भी था कि नेपाल की पुनीत धरती पर ही उस महापुरुष का जन्म हुआ था, जिसने खोई हुई विपश्यना विद्या खोज कर अनेकों के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। परंतु बहुत चाहते हुए भी मैं लाचार था। मैं बर्मी नागरिक था। बर्मी सरकार ने कृपा करके मुझे जो बर्मी पासपोर्ट दिया था, उससे मैं केवल भारत की ही यात्रा कर सकता था, क्योंकि उस पर केवल भारत का ही एंडोर्समेंट था। अतः कानूनन मैं नेपाल नहीं जा सकता था।

नेपाल के लोगों के लाभार्थ मैंने सितंबर १९७२ में एक शिविर रक्सौल में लगाया, जो कि भारत-नेपाल सीमा के इस ओर है। उस ओर के नगर बीरगंज से तथा काठमांडू से अनेक लोग इस शिविर में सम्मिलित हुए। शाम के प्रवचन में भाग लेने के लिए बीरगंज के बहुत से श्रद्धालु श्रोतागण भी आ जाया करते थे। शिविर के सफलसमापन पर उनका बहुत बड़ा दबाव पड़ा कि मैं एक शिविर बीरगंज में अवश्य लगाऊं। वहां शिविर लगाने के लिए रक्सौल की तुलना में अधिक बड़ी सुविधा उपलब्ध है। अनेक लोग शिविर में सम्मिलित होने के लिए आतुर भी हैं। अतः अनेकोंके भले के लिए मुझे बीरगंज में शिविर लगाना ही चाहिए। उनका तर्क था कि मूलतः भारतीय होने के कारण धोती-कुर्ता पहन कर सरहद पार करूं तो इमीग्रेशन के अधिकारी मुझे भारतीय ही मानेंगे और नेपाल-प्रवेश में कोई कठिनाई नहीं होगी।

परंतु मुझे उनका सुझाव मान्य नहीं था। पूज्य गुरुदेव का उज्ज्वल आदर्श मेरे सामने था। वे भारत का ऋण चुकाने के लिए स्वयं यहां आकर लोगों को विपश्यना का धर्मदान देना चाहते थे। इस निमित्त उन्होंने पासपोर्ट के लिए आवेदनपत्र चढ़ाया परंतु बर्मी सरकार अपने नियमों से बँधी थी। उन्हें पासपोर्ट तभी दे सकती थी जब कि या तो वे सदा के लिए बर्मा छोड़ कर चले जायँ अथवा अपने किसी विदेशी साधक से विदेश में नौकरी पाने का पत्र मँगवा कर उसके आधार पर जायँ। मुझे याद है, मेरे सामने ही बर्मी सरकार का कैबिनेट सेक्रेटरी ऊ विन पे, गृहमंत्री कर्नल चोजो की ओर से उन्हें यह परामर्श देने स्वयं आया था। ऊ विन पे गुरुदेव का साधक शिष्य था। गृहमंत्री ही नहीं तत्कालीन सरकार के लगभग सभी मंत्री गुरुदेव के प्रति अत्यंत श्रद्धा और सम्मान का भाव रखते थे। परंतु उनकी अपनी लाचारी थी। जिस आधार पर गुरुदेव ने पासपोर्ट मांगा, उस पर पासपोर्ट नहीं दिया जा सकता था। इसीलिए ऊ विन पे ये सुझाव लेकर आया था। परंतु उसके द्वारा प्रस्तुत किए गए दोनों ही विकल्प झूठ पर आधारित थे अतः गुरुदेव को स्वीकार्य नहीं हुए। शुद्ध धर्म सिखाने की धर्मयात्रा का पहला कदम ही शील-विरुद्ध हो तो धर्म सिखाने में सफलता कैसे मिलेगी! इस बुनियादी सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए मैं भी बीरगंज वालों के प्रस्ताव को स्वीकार न कर सका। मैंने उनसे कहा कि मैं बर्मी नागरिक होते हुए अपने आप को भारतीय नागरिक कैसे घोषित कर सकता हूं?

इस शिविर में नेपाल का एक बहुत धनी नेपाली उद्योगपति बैठा था। सभी सरकारी महकमों में उसकी अच्छी पहुँच थी। उसने कहा आप मेरी कार में बैठ कर नेपाल में प्रवेश करें। कोई अधिकारी आप से प्रश्न भी नहीं करेगा कि आप भारतीय हैं या अन्य किसी देश के नागरिक। अतः आप झूठ बोलने के दोष से बच जायँगे। लेकिन मैं इस प्रस्ताव को भी कैसे स्वीकार करता! आखिर झूठ तो झूठ ही था। ठगी तो ठगी ही थी। अतः मैं नेपाल नहीं जा सका। शिविर भारत में ही लगते रहे।

समय बीतता गया। विभिन्न देशों के हजारों साधक भारत में लगे शिविरों में सम्मिलित होने लगे। अब उनमें से अनेकों ने यह आग्रह करना आरंभ किया कि मैं उनके देशों में जाकर विपश्यना के शिविर लगाऊं ताकि उनके अनेक बंधु-बांधव, स्नेही-संबंधी जो भारत नहीं आ सकते हैं वे इस कल्याणकारी विद्या का लाभ ले सकें और अन्य अनेक लोग भी लाभान्वित हो सकें। उनका कहना था कि यह विद्या वैज्ञानिक है, युक्तिसंगत है, सांप्रदायिकता-विहीन है और आशुफलदायिनी है, अतः पश्चिम देशों के लोग इसे बेझिझक स्वीकार कर लेंगे।

उनका आग्रह बहुत उचित था और पूज्य गुरुदेव की मान्यता भी यही थी कि विशुद्ध विपश्यना ब्रह्मदेश से भारत जायगी और वहां से सारे विश्व में फैलेगी। बाहर शिविर लगेंगे तो ही फैलेगी, अन्यथा कैसे फैलेगी! अतः मैंने दिल्ली स्थित बर्मी दूतावास को अपने पासपोर्ट पर अन्य देशों के लिए एंडोर्समेंट हेतु आवेदनपत्र चढ़ाया। बर्मी राजदूत और दूतावास के अन्य अधिकारी मेरे परिचित थे। वे मेरे धर्मदूत के कार्य से बहुत प्रसन्न भी थे और विश्व में विपश्यना फैलाने वाली मेरी योजना में सहयोग भी दिया चाहते थे। पर वे भी असमर्थ थे। उन्हें नये एंडोर्समेंट देने का अधिकार नहीं था। अतः उन्होंने बर्मी सरकार के विदेश मंत्रालय को मेरा आवेदनपत्र भेजा। परंतु वहां से नामंजूर हो कर आ गया। सरकार भी अपनी निर्धारित नीति से बँधी हुई थी। मैंने सारी स्थिति समझाते हुए अपील चढ़ाई, पर वह भी दूतावास से ही अस्वीकृत हो गयी क्योंकि सरकार की निश्चित नीति के विरुद्ध कोई भी अपील रंगून भेजना उन्हें उचित नहीं लगा। अतः मैं भारत में ही शिविर लगाता रहा।

यों समय बीतता गया। विदेशी साधकों का दबाव भी बढ़ता

गया। मैंने रंगून में अपने मित्र ऊ ति हान से संपर्क किया। वह भी चाहता था कि मैं पश्चिमी देशों में जाकर विपश्यना का प्रचार करूं। उसी के अथक प्रयास से मुझे बर्मा से भारत आने के लिए दुर्लभ पासपोर्ट प्राप्त हुआ था। उन दिनों वह बर्मी सरकार का विदेशमंत्री था। अब अवकाश प्राप्त था। उसने परामर्श दिया कि मैं तत्कालीन बर्मी प्रधानमंत्री कर्नल मौं मौं खा को अपील चढ़ाऊं। वह भी उस पर दबाव डालेगा। कर्नल मौं मौं खा मेरा भी मित्र था। ऊ ति हान के नेतृत्व में एक बार भारत और दूसरी बार रूस तथा अन्य साम्यवादी देशों से व्यापार संबंधी समझौता करने के लिए जो सरकारी प्रतिनिधि मंडल गये थे उनमें कर्नल मौं मौं खा था और मैं भी साथ था। वैसे उससे परिचित तो बहुत पहले से ही था पर इस यात्रा में और अधिक घनिष्टता बढ़ी। इसके बाद जब नेविन सरकार बनी तो वह उद्योग मंत्रालय में सचिव पद पर नियुक्त हुआ। उद्योग मंत्रालय से मेरे पासपोर्ट के आवेदन को स्वीकृत कराकर शीघ्र आगे बढ़ाने में उसने बहुत मदद की थी। मेरे भारत आने के बाद वह उद्योगमंत्री बना और फिर प्रधानमंत्री। उससे इतनी घनिष्टता होने के कारण बहुत आशान्वित हो कर मैंने उसे आवेदनपत्र चढ़ाया और एक व्यक्तिगत पत्र भी लिखा। परंतु उसके भी हाथ बँधे हुए थे। लगता है कि निर्धारित सरकारी नीति को बदल सकने में वह नितांत असमर्थ था। वैसे वह मेरे धर्म-प्रशिक्षण के कार्य से बहुत प्रसन्न था और गौरव भी अनुभव करता था। वर्षों बाद सन १९९० में जब मैं बर्मी सरकार के आमंत्रण पर बर्मा गया तब उसने अवकाश ग्रहण कर लिया था। उस समय जो मेरे अनेक पुराने घनिष्ठ मित्र मुझसे मिलने घर आए, उनमें यही पहला व्यक्ति था। वह मेरे धर्मदूत के कार्य की सफलता के लिए देर तक प्रसन्नचित्त से बधाई देता रहा। परंतु प्रधानमंत्री होते हुए भी, मेरा मित्र होते हुए भी, मेरे कार्य से अत्यंत गौरव महसूस करते हुए भी उन दिनों की सरकारी नीति के कारण वह मेरे आवेदनपत्र को स्वीकार न कर सका।

एंडोर्समेंट मिले बिना मैं भारत के बाहर यात्रा नहीं कर सकता था। उस समय नेपाल के साधकों की ओर से पुनः दबाव पड़ने लगा। उनका आग्रह था कि मैं अन्य देशों में न जा सकूं यह लाचारी तो समझ में आ सकती है, परंतु नेपाल तो बिना पासपोर्ट के भी आ ही सकते हो। नेपाल के एक सरकारी अधिकारी ने भी यह आश्वासन दिया कि नेपाल की यात्रा निर्विघ्न हो सकेगी, इसकी वह स्वयं जिम्मेदारी लेता है। परंतु मैं इस सुझाव से सहमत नहीं हो सका। मेरा दृढ़ निश्चय था कि बरमी नागरिक होने के कारण जब तक बरमी सरकार अनुमति नहीं देगी, मैं भारत छोड़ कर अन्य किसी देश की भी यात्रा नहीं करूंगा। राजनैतिक प्रतिबंधों के साथ-साथ नैतिकता का भी यही तकाजा था। अतः मैं नेपाल में धर्म शिविर लगाने के लिए अपने साधकों के प्रबल आग्रह को स्वीकार नहीं कर सका।

आज इन सारी बातों का पुनरावलोकन करता हूं तो बड़ा धर्म संतोष होता है कि मेरा निर्णय उचित ही था। यदि नीति-नियमों का उल्लंघन कर नेपाल चला जाता तो जीवन की इस उज्ज्वल धर्मचारिका में एक दाग लग जाता जो सदा कांटे की तरह चुभता रहता। आगे जाकर समय पकने पर नेपाल में धर्मदूत की सेवा का कानूनन अवसर मिल ही गया।

अतः जो हुआ अच्छा ही हुआ। मंगलकारक ही हुआ।

मंगल मित्र,
सत्यनारायण गोयन्का.

महिलाओं की वर्तमान स्थिति और विपश्यना साधना

– चंद्रप्रकाश जायसवाल

मानवीय सृष्टि में महिलाओं में पुरुषों की तुलना में भावनाएं, विभावनाएं, संवेदनाएं और संवेगों की अधिकता होती है। इसी कारण वे आसक्ति, अनासक्ति, राग-द्वेष, तनाव, दबाव, खिंचाव, उत्तेजना, उद्वेग, अवसाद, असुरक्षा, बेचैनी, बेकली, व्याकुलता, आकुलता आदि से अधिक ग्रस्त रहती हैं। भावनात्मक स्तर पर उनका जीवन राग-द्वेष, सुख-दुख, लिप्सा-ईर्ष्या, मोह-मत्सर आदि से आंदोलित होता रहता है। जबसे आधुनिक युग में विकास की प्रक्रिया ने उन्हें गतिशील बनाया है तबसे महिलाओं के जीवन में भारी उथल-पुथल मची है। वे घर-गृहस्थी के भार को उठाते-उठाते बाहर दफ्तरों के दायित्व को भी उठाने लगी हैं। इससे उनके जीवन पर चहुँतरफा प्रहार हो रहा है। वे जीवन की आपा-धापी, भाग-दौड़, सामाजिक असुरक्षा, असंतोष, प्रताड़ना, आतंक, पर्यावरण प्रदूषण आदि तो बाह्य रूप से शिकार हैं ही, आंतरिक रूप से अपनी भावनात्मक थितियों की पीड़ा भी झेल रही हैं। परिणामस्वरूप उनके जीवन का संतुलन डगमगा गया है। इससे वे शारीरिक ही नहीं, मानसिक रोगों से भी ग्रस्त हैं। इन स्थितियों से मुक्ति पाने के लिए महिलाएं भी प्रायः दर्द निवारक दवाएं, स्लीपिंग-पिल्स, चिंताहारी ट्रेंक्विलाइजर, संवेदनहारी मादक दवाओं का भी सहारा लेती हैं। नशीली दवाओं के लेने का मुख्य कारण जीवन की वर्तमान स्थितियों से बचना या यथार्थ से पलायन करना है। तात्कालिक या अस्थाई लाभ इससे भले दिखाई दे, पर स्थायी लाभ कुछ नहीं होता।

जीवन में हर्ष-विषाद, सुख-दुख के अवसर तो आते ही रहते हैं। इन स्थितियों में मानसिक संतुलन और समता बनाये रखने में ही जीवन की सफलता है। संसार में सब कुछ मनचाहा नहीं हो सकता। मनचाही, अनचाही होती ही रहती है। विपश्यना ध्यान साधना की पद्धति ऐसी है जिससे मन काया पर होने वाली संवेदनाओं को साक्षीभाव से, तटस्थभाव से देखता, अनुभव करता है। विपश्यना न तो कोई जादू-टोना है और ना ही सम्मोहन विद्या। यह तो मात्र सत्य-दर्शन अर्थात वर्तमान क्षण के यथार्थ को जानने की एक साधना है। यह साधना अंतर्मन की यात्रा है। मन में कोई विचार, कोई विकार जागते ही उसके फलस्वरूप शरीर में उत्पन्न संवेदनाओं के प्रति न राग-द्वेष से अलग रह कर समताभाव पुष्ट करना होता है। अर्थात समता बनाये रख कर संवेदनाओं को साक्षीभाव से देखना होता है। विपश्यना जीवन के संघर्षों से पलायन नहीं, बल्कि जीवन के अभिमुख हो कर समस्याओं का सामना करना सिखाती है। इससे आत्म संयम और आत्म निर्भरता आती है। विपश्यना अदम्य उत्साह के साथ मंगल मार्ग पर चलने का राजपथ है। शांत चित्त से, सजग चित्त से, मन की समता बनाये रखते हुए सिर से पैर तक और पैर से सिर तक धारा-प्रवाह या शरीर के एक-एक अंग में सहजभाव से उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं को देखना ही विपश्यना है।

वस्तुतः सभी दुःखों का मूल राग या द्वेष है। जब-जब हम मन को राग या द्वेष की संवेदना से जोड़ते हैं तब-तब हम दुःख ही पाते हैं। यदि इन दोनों प्रकार की संवेदनाओं के साथ समता बनी रहे तब कोई दुःख नहीं हो सकता। मन में जब संवेदना जाग्रत होती है तब राग या द्वेष की संज्ञा उत्पन्न होती ही है। इसके बाद प्रतिक्रियास्वरूप राग-द्वेष जन्म लेते ह, फिर वही संस्कार बन जाते हैं। शील, समाधि में स्थित होकर अंतःप्रज्ञा जाग्रत करना विपश्यना का ध्येय है।

विपश्यना द्वारा इस ध्येय को प्राप्त करना वैसे तो नर-नारी, बाल-वृद्ध सभी के लिए उपयोगी है परंतु महिलाओं के लिए तो आज की परिस्थिति में अपरिहार्य है। यह अनेकों द्वारा अनुभूति से जाना गया तथ्य है कि जितनी बार विपश्यना शिविर में भागीदारी की जाती है उतना ही अधिक लाभ होता है। विपश्यना शिविर में भाग लेने वाली महिलाओं से की गयी भेंट में उन्होंने अपने अनुभव निम्नानुसार बताये; –

श्रीमती रत्नप्रभा लोखंडे ने विपश्यना के प्रति आकर्षित होने का विस्तृत वर्णन करते हुए बताया कि उन्होंने पूर्व में इस साधना-पद्धति के संबंध में कुछ सुन रखा था कि यह जीवन के लिए बड़ी उपयोगी है और मन की शांति के लिए अपूर्व है। घटना बड़ी पुरानी है। मैं अपने भाई के यहां कल्याण गयी थी। मेरे भाई ने प्रेरित किया कि इगतपुरी जाकर विपश्यना शिविर में भाग लेकर देखो, जरूर लाभ होगा। यह बात सन १९८४ की है। मेरे मन में आया कि इगतपुरी जाकर देखना चाहिए। वहां के अनुभव बताते हुए श्रीमती लोखंडे ने बताया कि शिविर के मेरे दस दिन व्यर्थ नहीं गये। उससे बहुत लाभ मिला। मुझे अनुभव हुआ कि इससे मन के विकार निकलते हैं और मन निर्मल होता है। इतना ही नहीं, मुझे व्यक्तिगत समस्याओं के निदान का भी मार्ग मिला। इसके बाद वर्ष १९८५ से हम दोनों पति-पत्नी इगतपुरी नियमित रूप से जाने लगे। बीच-बीच में भोपाल में भी हम शिविरों में भाग लेते रहे हैं। आगे उन्होंने बताया कि अब तो मेरी दृष्टि ही बदल गयी है, लोक-व्यवहार का नजरिया ही बदल गया है। श्रीमती लोखंडे ने साधना के बारे में बताया कि मैं प्रतिदिन सुबह-शाम विपश्यना-ध्यान करती हूं। मेरे आवास पर महीने के अंतिम रविवार को ६-७ घंटे साधना होती है जिसमें अनेक पुराने साधक भाग लेते हैं।

कुमारी लीना संबरकर ने बताया कि मैं डी.एच.एम.एस. की विद्यार्थी हूं। मेरे माता-पिता पूर्व में यह साधना कर चुके हैं। उनकी प्रेरणा से ही मैंने वाल्मी, भोपाल का दस दिवसीय शिविर पूर्ण किया है। इस शिविर के बाद मेरे व्यवहार में अनूठा परिवर्तन आया है। अब मैं अपने परिचितों तथा परिजनों को विपश्यना शिविर के लाभ तथा उसमें भाग लेने के लिए प्रेरित करती रहती हूं। विपश्यना के लाभ तो अनेक हैं परंतु हानि कुछ भी नहीं, ऐसी मेरी मान्यता है।

डॉक्टर (श्रीमती) कलागिडवानी जो भोपाल की एक प्रसिद्ध स्त्री-रोग विशेषज्ञा हैं, ने विपश्यना ध्यान के संबंध में बताया कि मैं पुराने साधकों से जानकारी प्राप्त कर भोपाल के वाल्मी परिसर में आयोजित विपश्यना शिविर में सम्मिलित हुई। इस साधना से मुझे बहुत लाभ हुआ। ऐसा लगा कि मेरा अंतर धुल कर स्वच्छ, निर्मल हो गया। मेरे क्रोधी स्वभाव में आशातीत परिवर्तन आया है। मैं चाहती हूं कि मेरे मरीज भी इस ध्यान साधना का लाभ उठायें। इसके लिए मैं प्रयासरत भी हूं।

श्रीमती विजयलक्ष्मी ठक्कर जो एक सहायक प्रोफेसर हैं, उन्होंने बताया कि अपनी भतीजी की प्रेरणा से वाल्मी परिसर में आयोजित शिविर में भाग लेने की मेरी मानसिकता बनी थी। मैं पूर्व से ही अस्थमा तथा पीठदर्द के रोग से ग्रसित हूं। अब इस साधना के पूर्ण करने पर मुझे लाभ तो हुआ है लेकिन दस दिन में तो सब कुछ बदल नहीं सकता। यह तो धीरे-धीरे ही संभव है। निस्संदेह विपश्यना की उपलब्धियां तो मुझे मिली ही हैं। मेरी कामना है, औरों को भी इसका लाभ मिले।

श्रीमती उमा केला जो विपश्यना साधना की पुरानी साधिका है, ने बताया कि वर्ष १९७६ से मैं इससे जुड़ी हूं। पति श्री अशोक केला वर्ष १९७४ में इंदौर शिविर में गये थे। उन्हें इससे लाभान्वित देखकर मैं बहुत प्रभावित हुई। फिर तो हम लोग साथ-साथ विपश्यना शिविरों में जाने लगे। दस-दस दिन के लगभग १५ शिविर तथा महीने भर के बड़े शिविर में भी भाग ले चुकी हूं। विपश्यना के लाभों के संबंध में चर्चा करते हुए श्रीमती केला ने बताया कि प्रथम बार में ही मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मेरा दूसरा ही जन्म हुआ है। वस्तुतः मन की समता से सभी जगह समता दिखायी देती है। विपश्यना करते हुए अपने को जानने, जान कर शुद्ध करने, विकारों से निर्जरा करने से समता स्थापित होती है। जब हम सतत अभ्यास करते-करते सर्वांगीण धर्म को सम्यक बनाते हैं तब जीवन व्यवहार में सर्वांगीण उन्नति होती है। मनसा, वाचा, कर्मणा अशुद्धियां दूर होने पर जीवन धन्य हो जाता है। आगे आपने बताया कि प्रत्येक व्यक्ति का जीवन समय, शक्ति तथा संपदा से संचालित होता रहता है। इसी के घेरे में वह लिप्त रहता है। पर विपश्यना से अंतर्दृष्टि बदलने पर वह अपना समय, शक्ति और संपदा सबके मंगल में लगाता है। अपने स्वयं के अनुभव के संबंध में उन्होंने बताया कि पहले जो बुद्धि पर पर्दा पड़ा था वह धीरे-धीरे हटता गया। पहले दूर की नहीं सूझती थी। अब ऐसा नहीं लगता। निर्णय लेने की शक्ति जाग्रत हो गयी और उलझनों के सुलझाव का रास्ता भी मिल गया। जैसा कि आचार्यजी कहते हैं जन्म दो खोल में होता है, एक तो मां के पेट से और दूसरा गुरु के ज्ञान से। विपश्यना के लिए कहा जाता है कि आओ और देखो। फिर देखते-देखते आंतरिक परिवर्तन आने लगता है। तीसरे दिन से ही आमूल-चूल परिवर्तन की शुरूआत हो जाती है। जैसा कि मैंने अनुभव किया कि विपश्यना करने वाला मानसिक रूप से स्वस्थ और ठोस हो जाता है। उसके मन में आत्म-शुद्धि, आत्म-विमुक्ति पाने की कला आ जाती है। चित्त शांत और शुद्ध हो जाता है। मन में मैत्री और करुणा का निर्झर प्रवाहित होने लगता है जिससे "भवतु सब्ब मङ्गलं" याने 'सबका मंगल हो' का भाव उदय होता है। बस इसके लिए आवश्यक है कि जीवन भर सतत सजग और सचेष्ट रह कर विपश्यना का अभ्यास किया जाय, विपश्यना का जीवन जीया जाय। तभी मानव जीवन की चरम उपलब्धि सुनिश्चित है।

मृत्यु मंगल

जौनपुर(उ.प्र) निवासी श्री रामदेव यादव(मेरे पिताजी) ने पहला शिविर प्रतापगढ़ में ६९ में किया था। लगभग दो वर्ष तक धम्मगिरि पर रह कर ४-५ शिविर और किए तथा धर्मसेवा की।कुछ समय पूर्व आंखें चली जाने बाद वे गांव में रहने लगे थे। इस बीच लगभग ८० वर्ष की पकी अवस्था में पिछले दो वर्ष से मानसिक रूप कुछ अस्वस्थ हुए तो चिंता हुई कि इनकी अंतिम गति कैसी होगी! परंतु पूज्य गुरुजी की मंगल मैत्री तथा धर्म की महिमा ऐसी कि मृत्यु के कुछ दिनों पूर्व से उनकी सजगता काफी अच्छी हो गयी और २२ जनवरी, १९९७ को शरीर छोड़ने के चार-पांच घंटे पूर्व उन्हें मृत्यु का आभास हो गया। सुबह की नित्यक्रिया स्वयं पूरी की और मरने के चंद क्षणों पूर्व बात-चीत करते हुए अपने हाथों पानी पीकर इतनी शांतिपूर्वक अंतिम सांस छोड़ा कि घर वालों को पता तक न चला। साधना के अभ्यास के बारे में जब पूछो, 'साधना चलती रहती है' का जवाब देते। मृत्यु के घंटों बाद भी चेहरा इतना शांत और सौम्य था कि लोग देख कर आश्चर्यचकित थे। धन्य है धर्म और इसे धारण करने वाले साधक! (सं.)